eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

कबीर का समाज चिंतन

[1]शशि कुमारी
[1]शोधार्थी, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

Received: 17 Dec 2023, Accepted: 15 January 2024, Published online: 01 February 2024

Abstract

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन साहित्य तथा कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल की समय सीमा संवत् 1375 से 1700 तक स्वीकार की है। इस काल खण्ड को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है– निर्गुण धारा एवं सगुण धारा। निर्गुण धारा ज्ञानाश्री तथा प्रेमाश्री शाखाओं में बँटी हुई है तथा सगुण धारा भी कृष्णकाव्य तथा रामकाव्य दो शाखाओं में विभक्त है। कबीरदास निर्गुण धारा के अन्तर्गत ज्ञानाश्री शाखा के प्रतिनिधि संत कवि के रूप में विख्यात हैं। इस शोध आलेख में कबीरदास के सामाजिक दृष्टिकोण या उनकी सामाजिक चेतना का वर्णन, उदाहरणों सहित किया गया है जो आज के इस बौद्धिकतावादी समाज एवं हिंसा के पथ पर चलने वाले भारतीय समाज को नई दिशा प्रधान करने में सहायक सिद्ध होगा।

बीज शब्द, मध्यकाल, समाज अन्धविश्वास, जाति–पाति, हिंसा।

Introduction

संत कबीर का आगमन एक ऐसे समय में हुआ जब भारत मुसलमानों के आक्रमणों, सामाजिक आडम्बरों व कुरीतियों से घिरा हुआ था। साम्प्रदायिक हिंसा ज़ोरो पर थी। मध्यकाल की सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने ग्रन्थ ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' में लिखते हैं :–

देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वह कुछ भी नहीं कर सकते थे।''[1] अच्छे समाज का निर्माण वहाँ के स्वतंत्र विचारों वाले व्यक्तियों से ही सम्भव हो सकता है। मध्यकालीन समाज, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से खण्ड–खण्ड हो चुका था। यह युग ऐसे शासकों का युग था जो विधर्मी थे। उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति को अपने अनुसार परिवर्तित करना था। साधारण हिन्दू जनता के पास जब कोई भी रास्ता शेष नहीं रहा तो उसने अध्यात्म एवं धर्म की शरण ली परन्तु धर्म के ठेकेदारों ने जनता के भीतर साम्प्रदायिक द्वेष की आग को सुलगाने का काम किया। मध्यकाल की इस स्थिति पर डॉ. पुष्पपाल सिंह लिखते हैं :–

उस समय हिन्दू–मुसलमानों में संघर्ष चलता ही रहता था, चाहे आक्रमणों के पीछे कितना ही छोटा कारण क्यों न हो।''[2] कबीर के समय में धर्म के क्षेत्र में एक ओर जहाँ शंकराचार्य का अद्वैतवाद था वहीं दूसरी और समानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद तथा सूफियों की प्रेमधारा भी थी। जनता धर्म के इन तीनों रूपों से असंतुष्ट थी। महमूद गजनबी के लगातार आक्रमणों ने धर्म को ओर भी कमज़ोर कर दिया। मंदिरों की तोड़ फोड़ के परिणामस्वरूप सगुणोपासना की जड़े तक हिल गई। ऐसे समय में कबीर के पास न तो कोई अस्त्र था न शस्त्र जिससे वह विकृत समाज को एक व्यवस्थित ढंग से पुनः स्थापित कर सकें। अतः उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों को समाप्त करने के प्रयास से एकता के

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

भाव को स्थापित करने का प्रयास किया। कबीर अन्य वस्तुओं की अपेक्षा मनुष्य कल्याण पर विशेष महत्व देते हैं। वह अपने लिए नहीं सम्पूर्ण मानवता के लिए रोते हुए प्रतीत होते हैं।

''सुखिया सब संसार है, खाबै अरू सोवै।
दुखिया दास कबीर, जागे अरू रोवै।''[3]

अनेक आलोचकों ने कबीर को कवि बाद में तथा समाज सुधारक पहले माना है। अपनी साखियों के द्वारा जनता को सही उपदेश देना उनका मुख्य उद्देश्य था। बिना किसी भय के सब प्रकार के आडम्बरों का विरोध खुलकर करने वाले कबीरदास अनुभूति को अधिक महत्व देते हैं। समाज में व्याप्त जात–पात, छुआ–छूत की अवहेलना करते हुए कबीर कर्म को अधिक महत्व देते हैं न कि कुल को। कबीर के अनुसार

मनुष्य ऊँचे कर्मो से ऊँचा बनता है न कि ऊँचे कुल में जन्म लेने से–

कबीर का मानना है कि यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर से उपजा है और एक दिन उसी में लीन हो जाएगा। जाति–पाति के आधार पर लड़ाई–झंगड़ा करना व्यर्थ बात है।

कबीर हिन्दुओं और मुस्लमानों द्वारा फैलाए गए तथा धर्म के आधार पर बनाए गए पाखण्डों का भी विरोध करते हैं। कबीर के अनुसार ईश्वर एक है। धर्म के आधार पर उस परमसत्ता परमात्मा को बाँटा नही जा सकता है। दिखावे की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं :–

''छापा तिलक बनाई करि, दग्ध्या लोक अनेक।
तन कौं जोगी सब करै, मन कौं बिरला कोई।''[4]

कबीर बाहरी आडम्बर की अपेक्षा व्यक्तिगत आचरण और साधना पर विशेष बल देते हैं।

''न जाने तेरा साहिब कैसा है।
मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहिब तेरा बहिश है।''[5]

कबीर मूर्तिपूजा का भी विरोध करते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर की प्राप्ति किसी विशेष स्थान पर जाकर नहीं होती। सर्वव्यापी ब्रह्म प्रत्येक मनुष्य के हृदय में विद्यमान है। उसे घट–घट जाकर ढूँढना व्यर्थ है। ईश्वर तो सदैव मनुष्य के हृदय में विराजमान रहता है केवल आवश्यकता है तो बौद्धिक संसार को भूलकर अपने भीतर झाँकने की।

''काया कासी खोजै बास।
तहाँ जोति सरूप भयौ परकास।''[5]

कहने का अभिप्राय यह है कि काया का अथवा शरीर का कोई भी महत्व नहीं है। काया के भीतर रहने वाली आत्मा का महत्व है जो अविनासी है। एक अन्य स्थान पर मूर्ति पूजा के विषय में वह कहते हैं–

''पाहन पूजै हरि मिले तो मैं पूंजू पहार।
घर की चाकी कोई न पूजै पीस खाय संसार।''[7]

कबीर ने अपनी वाणियों में जो समाज सुधार अथवा सामाजिक चेतना का जो व्यवहार ग्रहन किया है उसमें भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधानात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल विद्यमान है। उन्होंने मनुष्य की मनुष्यों के प्रति होने

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

वाली अहिंसा को ही नहीं उदघाटित किया अपितु पशुओं के प्रति होने वाली हिंसा का चित्रण करके सम्पूर्ण मानवता पर करारी चोट की है।

''दिन भर रोजा रखत हैं राति हनत हैं गाय
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय
बकरी पाती खाति है ताको काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल।।''[8]

कुछ लोगों की यह मान्यता है कि कबीर वेदों एवं पुरानों को पढ़ने के पक्षपाती नहीं थे। उनकी यह धारणा गलत कही जा सकती है। कबीर ने ग्रन्थों को अनुभव की देन माना है परन्तु जो ग्रन्थ समाज में अन्धविश्वास को बढ़ावा देते हैं उनका वह विरोध करते हैं। उन ग्रन्थों को पढ़कर जो समाज में अन्ध विश्वास का प्रचार–प्रसार करना चाहते हैं उनकी कबीरदास निंदा करते हैं। कबीर के अनुसार :–

''वेद कतैब कहौ क्यू झूठा
झूठा जो न बिचारै।
सब घटि एक एक करि जानै,
भी दूजा करि मानै।''[9]

कबीर प्रगतिशीला सामाजिक चेतना के कवि कहे जा सकते हैं। समाज में व्याप्त विभिन्न पाखण्डों, कुरीतियों, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों की उन्होंने आलोचना की जो समाज को प्रकाश की अपेक्षा अंधेरे में धकेलने का काम करती हैं। ''हरि ही सत्य है'' यही कबीर का उपदेश है। ईश्वर को इस सांसारिक मोह माया को त्यागते हुए ईश्वर की शरण ले लेनी चाहिए–

''हरि मै तन है, तन में हरि है
है पुनि नाँदी साई।[10]

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर का सामाजिक चिंतन उन्हें एक युग पुरुष के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। भले ही कबीर ने मध्यकाल में सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर अपने उपदेश दिए परन्तु उनके उपदेशों की प्रासांगिकता निरन्तर बनी हुई है। वर्तमान समय में जब समाज हिंसा और बौद्धिकता के रास्ते पर चल रहा है ऐसे में कबीर की वाणियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : कान्ती पब्लिकेशन्स, 2007) पृ.72
2. सिंह पुष्पपाल, कबीर ग्रन्थावली (दिल्ली : नमन प्रकाशन, 2010) पृ.56
3. सिंह पुष्पपाल, कबीर ग्रन्थावली (दिल्ली : नमन प्रकाशन, 2010) पृ.57
4. शर्मा वेदव्रत, कबीर–वाणी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (दिल्ली : कल्पना प्रकाशन, 2012) पृ.6
5. सिंह पुष्पपाल, कबीर ग्रन्थावली (दिल्ली : नमन प्रकाशन, 2010) पृ.66
6. गुप्त हरिहर प्रसाद, कबीर–काव्य : प्रतिभा और संरचना (इलाहाबाद : भाषा–साहित्य–संस्थान, 1983) पृ.94

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

7. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : कान्ती पब्लिकेशन्स, 2007) पृ.73
8. वही, पृ. 73
9. शर्मा वेदव्रत, कबीर–वाणी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (दिल्ली : कल्पना प्रकाशन, 2012) पृ.9
10. शर्मा वेदव्रत, कबीर–वाणी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन (दिल्ली : कल्पना प्रकाशन, 2012) पृ.34